प्रथम अध्याय

छायावादी काव्यांदोलन का वैचारिक परिप्रेक्ष्य
1. छायावादी काव्यांदोलन का वैचारिक परिप्रेक्ष्य

छायावाद का आरंभ 1919 से माना जाता है। मुकुटप्पर पाण्डेय ने 1920 ई. के ‘श्री शायर’, ‘जबलपुर’ से प्रकाशित अमरासिक पत्रिका के चार अंकों में ‘हिंदी में छायावाद’ शीर्षक से छायावाद की परिभाषा दी थी। इससे पूर्व छायावाद से सम्बंधित कोई लेख देखने को नहीं मिलता है।

मुकुटप्पर पाण्डेय ने छायावाद के सम्बंध में सबसे पहले यह उल्लेख किया कि हिंदी की कविता ‘रैली’ की परम्परा से हटकर मौलिकता की ओर आग्रह हो रही है। अपने दूसरे लेख “छायावाद क्या है?” में उन्होंने लिखा है - “अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंगाल-साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेगे कि यह शब्द ‘मिसर्टसिज्ज’ के लिए आया है। फिर भी छायावाद- “एक ऐसी मायामय सुकूम वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असंभव है क्योंकि ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।”

उन्होंने बताया कि छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी दृष्टि क्षणभर में वस्तु को स्पर्श करती हुई निकल जाती है। अंतरंगता के कारण वह वस्तु अन्य रूप में दिखाई पड़ती है। वस्तु के इस अन्य रूप का सम्बंध कवि के अतिर जगत से रहता है।

इस प्रकार पाण्डेय जी ने छायावाद के आलमिट्ट अंतर्दृष्टि को पहचाना और उन्होंने लिखा कि छायावादी कवि की दृष्टि सदैव ऊपर की ओर जाती है। संसार से उसका विशेष सम्बंध नहीं रहता है। छायावादी कवि प्रकृति को प्रतीक के रूप में देखते हैं।

1. टॉर्न नामदेव सिंह, छायावाद पृ.9 पर उद्धृत।
में ग्रहण करता है और उसके माध्यम से वह अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है ।

मुकुटद्वर पाण्डेय ने कहा है - “छयावाद की आवश्यकता हम इसलिए समझते हैं कि इससे कवियों के भाव-प्रकाशन को एक नया मार्ग मिलेगा । इस प्रकार के अनेक-मार्गों, रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है“।

‘सर्स्टी’ पत्रिका में छयावाद का सर्व-प्रथम उल्लेख जून 1921 के अंक में मिलता है । यह उल्लेख एक संवादात्मक निबंध है। कोई निर्मल बहन की विशद छया, वाणी की नीरवता और विस्तरण, उच्चवास, प्रतिभा, अत्यंत का विलास कहा है। इस लेख में छयावाद का प्रथम गुण अस्पष्टता माना है। इसी अवधि में छयावाद को अंग्रेजी ‘मिस्टरिटिज्म’ का पर्याय कहा गया और इस पर अंग्रेजी ‘रोमैटिस्टिज्म’ और टेग्नोर के काव्य का प्रभाव माना गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार छयावाद को काव्य-शैली या पौद्दति विशेष माना है - दर्शन के क्षेत्र में जिसे एकेश्वरवाद कहते हैं काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है । जब कवि संसार की समपूर्ण वस्तुओं में अपनी प्रियतम या प्रेमसी के दर्शन करता है तो वह यह छयावाद हो जाता है।

डॉ० नामवर सिंह के अनुसार -“सुशील कुमार की ‘अस्पष्टता’, मुकुटद्वर पाण्डेय की आध्यात्मिकता, आचार्य द्विवेदी का ‘रहस्य’, शुक्ल जी का आध्यात्मिक छयावास,’ वाजपेयी जी का ‘आध्यात्मिक छया का भाव’ और बंगाल का ‘श्यूल के प्रति, सुक्ष्म का विवेक’ सब एक ही हैं । सभी व्याख्याओं के अनुसार रहस्यवाद ही छयावाद है।”

1. डॉ० नामवर सिंह, छयावाद पृ 10 पर उद्धृत ।
2. डॉ० नामवर सिंह, छयावाद, पृ 13
डॉ० नामवर सिंह गांवते हैं - “इस तरह प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी की कविताओं की चर्चा के सिलसिले में अंग्रेजी के ‘मिस्टिसिज्म’ और ‘रोमैंटिसिज्म’ तथा हिंदी के रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छतावाद शब्द आए। व्यवहार में रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छतावाद शब्दों के शब्दार्थ और लोक-प्रचलित भाव का संबंध है। इन दोनों में निवासी थोड़ा-थोड़ा अंतर है।

रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद चिन्तन की सृजनता और स्वच्छतावाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा। “छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काय्यालम्बक अभिव्यक्ति है जो एक और पुरानी रूढ़ियों की मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में इस तरह क्रमशः विकास होता गया। “छायावाद” नामकरण जिन कविताओं के आधार पर हुआ था, जैसी ही कविता अगले वर्षों में भी नहीं हुई। बल्कि उनकी विषयवस्तु तथा रूप-विव्यास का विस्तार हुआ। इसलिए छायावाद के आरम्भिक अर्थ में भी क्रमशः व्यापकता का आना स्वाभाविक है।

छायावाद का आरम्भ पूर्ववर्तीक जातीय परम्पराओं के विद्रोह में हुआ। वैसे तो ऐसी कविताएँ 20वीं शताब्दी के दूसरे शतक में मिलते लगी थी किन्तु उनका वास्तविक स्वरूप सन् 1919 के बाद दिखाई पड़ता है। इस समय छायावाद के बारों स्तरभूमि-शिराला, पंत, प्रसाद और महादेवी की विचारधारा परिपक्व हो चुकी थी और उन्होंने छायावाद के स्वरूप को भी लगभग निर्धारित कर दिया था। छायावाद की अल्पकृति ‘कामयाबी’ मानी जाती है। प्रसाद जी के 1937 में स्वर्णवास के साथ-साथ छायावाद अतिक की वस्तु बनता चला गया।

1. डॉ० नामवर सिंह, छायावाद, पृ० 14
2. डॉ० नामवर सिंह, छायावाद पृ० 15
छायावाद की परिभाषाएँ इन चारों कवियों ने दी हैं। इनमें पंत, प्रसाद और जिसला के पुनर्मूल्यांकन में इस काव्यादरा के उद्भव और विकास को मूल्यांकित करते हुए स्पष्ट किया है - "किसी ने उसे रहस्यवाद का छोटा भाई, किसी ने अंग्रेजी से उद्घाटित यथार्थता तथा प्रमाण खोजने की दीर्घ-घुप्प में उसे बंगाल-साहित्य में प्रचलित छायावाद का ही बंगाला से आये हुए शायद के समान, हिन्दी संकल्पना के लिये मंत्तर-प्रदेश के हिन्दी नागरिक मान लिया। वास्तव में प्रति भाषा में ही उस संचारण के लिए एक बुद्धिमूल्यतः तथा भाषक नाम स्वीकार कर पीछे उसके समर्थन के प्रायः सभी मूल्यवान प्रयाल उसके सार्थक-तत्त्व को और भी उलझाते रहे उसके पास पहुंचने के बदले उससे और भी दूर होते रहे। साहित्य के मंदिर में छाया या प्रेत की स्थापना कर लेने पर अनेक प्रयाल करने पर भी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सके, छायावाद नये जीवन की वास्तविकता नहीं बन सकी। वह छाया की परछाई के रूप में ग्रहण की जा रही। जल्द जल्द, दृष्टि से ओझुल हो जाए और समालोचकों तथा समीक्षकों को दृष्टि-प्रसार की चमकीली रेती से उपजी मृग-वृक्ष का अध्ययन, मनन, संशोधन-विश्लेषण कर ज्ञान-ज्ञान उसे पकड़ने का प्रयाल किया गया वह हाय से छूटकर और भी दूर भागती रही, मिथ्या को सत्य प्रमाणित करने की वेष्ट में विद्यारूण ने आकाश-पाताल की चन्दनी जा जाली।

पंत जी ने इस काव्य को एक नयी जीवन-दृष्टि नया सोनत्वेव, नयी कला

1. पंत, छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ. 11
2. पंत, छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ. 14
भगिना, तथा अधिक संवेदनशील अभिव्यजना का माध्यम माना। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ‘मध्ययुगीन रहस्यवाद लोक-नितिक्ष तथा निरूपितमूलक था और छायावाद जीवन संक्रिय तथा प्रवृतिमूलक रहा है’।

छायावाद से सम्बंधित भावितीय को दूर करने के लिए उन्होंने स्पष्ट किया-“तात्कि छायावादी कवियों के सामने आत्मसहिति की धारणा तुच्छ होकर, भव-सुविद, मानव सुविद, विश्व-सुविद तथा लोक-सुविद की सम्बन्धता अनेक मूल्यों, विचारों तथा भावनाओं में रूप पर कर उनकी वाणी द्वारा स्पष्ट-मूर्त होने का प्रयत्न कर रही थी।

इस युग के आलोचकों ने छायावाद की आरम्भ में जमकर आलोचना की किन्तु बाद में इन उत्तरोत्तर की रचनाओं के माध्यम से उन्होंने छायावाद को समझा, परखा और उसके सम्बन्ध में उनकी अवधारणाएँ बदलती गयी।

पंतजी ने लिखा है - ‘पहले तो छायावाद न शुद्ध स्वच्छन्दतावाद है- जिसे शुक्ल जी ने ‘रोजमेण्टिसिज्म’ के लिए व्यवहृत किया है और न दू-बन्धु बंगला का अर्थात् रबीदनाथ का ही अजुकरण है। दूसरा यह है कि जिन विश्व-विकास की शक्तियों से उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में अंग्रेजी कवियों को तथा बंगाल में रबीदनाथ को प्रेरणा मिली, छायावाद को भी काल का व्यवधान पार करने के बाद मूल-प्रेरणा उनकी विकास के घोड़ों में मिली है। मूल की दृष्टि से यह नई प्रेरणा विश्व-चेतना में अवतरित हो चुकी थी। यह दूसरी बात है कि यह प्रेरणा विश्व के स्पर्श को हिंदी काव्य में संजोने के लिए भले ही प्रारंभ में कीटस शैली, वर्तमान आदि अंग्रेजी कवियों तथा कवीज्ञ-रबीदन के अयातन से सहायता मिली है। वैसे काव्य वस्तु के मूल्यांकन की दृष्टि से रबीदन ने स्वयं अंग्रेजी कवियों का

1. पंत, छायावाद पुनर्नूत्तमाङ्कन पृ 15
2. पंत, छायावाद पुनर्नूत्तमाङ्कन पृ 19
प्रभाव प्रहणकर नये काव्य में भारतीय सांस्कृतिक जागरण को वाणी दी तो उसमें उपनिषदों के बैतल्य के अतिरिक्त मध्ययुगीन समयों, कबीर आदि के सहस्यवाद, अध्यय, व्यक्तिवादी अनुपयोगी प्रभावों को भी समेट लिया है।

पंत जी ने अपनी इस पुस्तक में छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उन्होंने उनके नये प्रतीकों, बिंबीयों ओर मिथकों के स्वरूप को भी उजागर किया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पंत जी की इस पुस्तक से छायावाद सम्बंधी विचारधाराओं को स्पष्ट स्वरूप मिला। उससे इस काव्यधारा को समझने में भी विशेष सहायता मिली।

जयशंकर प्रसाद ने आँखू की बेदना के आधार पर छायावाद को पुलिलक्त िभाव का लावण्य, तहत और स्वाभिमानमयी अभिव्यक्ति कहा है। इसी प्रकार महोत्तरी दर्शन में छायावाद को स्वच्छत्ता छल्म में विभिन्न मानव अनुभूति की अभिव्यक्ति माना है। दौड़ ऊनेश्वर, छायावाद को ‘स्थूल के प्रति सुक्ष्म की, उपयोगिता के प्रति भावुकता, धार्मिक रुढ़ियों के प्रति स्वतंत्र का और काव्य के वन्धनों के प्रति स्वच्छंदता का विश्वास कहा है।’

इस प्रकार छायावाद एक शैली विशेष होने के साथ-साथ विशिष्ट जीवन-दर्शन और विचारधारा है। छायावाद में अपने गुण की विसंगतियों का भी विचार मिलता है। उस समय की राजनीतिक दासता, सामाजिक बंधन, दमन और शोषण और निरंकुशता का स्पष्ट चित्रण इन कवियों की चचनों में मिलता है।

छायावादी कविता में निम्नलिखित सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विचार-
धाराओं को समाविष्ट किया गया है:

1. पंत, छायावाद पुनर्जीविंदन पृ० 31
1.1 सामाजिक चेतना

1.1.1 बाल-विवाह, विधवा-विवाह का विरोध ।
1.1.2 नारी-शिक्षा के प्रति जागरूकता ।
1.1.3 सामाजिक वृत्तियों, अंध विश्वासों का विरोध ।
1.1.4 गिन्न वर्ज के प्रति संवेदना ।

1.2 धार्मिक चेतना

1.2.1 परम्परागत शौचालय का विरोध ।
1.2.2 धार्मिक शोषण का विरोध ।
1.2.3 जाती-पौर्ति की विषमताओं का विरोध ।

1.3 आर्थिक चेतना

1.3.1 अन्य आर्थिक-शोषण-नीति का विरोध ।
1.3.2 जमीदारों की शोषण-नीति का विरोध ।
1.3.3 पूंजीवाद का विरोध ।

1.4 राजनीतिक चेतना

1.4.1 ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध ।

1.5 सांस्कृतिक चेतना

1.5.1 भाषा-चेतना
1.5.2 विचार-चेतना
1.5.3 कला-चेतना
1.5.4 साहित्य-चेतना

1.1 सामाजिक चेतना

समाज अमूर्त होता है । समाज एक भावात्मक व्यवस्था है । यह व्यक्तियों
का समूह नहीं है। सामाजिक भावनाओं को न देख सकते हैं और न स्पष्ट कर सकते हैं। समाज से एक व्यवस्था का बोध होता है। इसमें प्रत्येक भाग के अपने विचार, आत्म-संबंध और आत्मसंपन्नता का प्रयास करता हुआ भी एक व्यवस्था में रहता है। विवाह, केवल श्री-पुरुष का सम्बन्ध नहीं है बल्कि बहुत भी नियमों की एक व्यवस्था है जो हमारे पारिवारिक जीवन को प्रभावित करती है। इसी दृष्टि से यह एक अपूर्ण संस्था है। पारस्परिक जागरूकता समाज का मूल तत्त्व है।

जागरूकता की दशा में स्थापित किये गये संबंध का निर्माण करते हैं। यह सम्बन्ध धीरे-धीरे विकसित होते हैं। दो स्थितियों में वित्त, पति, पत्नी और अन्य सम्बन्ध है। वे सम्बन्ध पारस्परिक जागरूकता पर आधारित हैं।

समाज को विकसित करने में समाजता तथा भिन्नता का समान महत्व है। एक ओर समाज के सभी सदस्य कुछ आधारों पर एक-दूसरे के समान होते हैं जबकि अनेक आधारों पर कोई भी व्यक्ति दूसरे के समान नहीं है। वास्तव में यह कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होता है, पर व्यवहार में दो स्थितियों घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। समाज में समानता और भिन्नता की अविभाजित को इस प्रकार से समझा जा सकता है।

समाजता से ताल्पर दृष्टिकोणों और उद्देश्यों की समानता से है। सामाजिक व्यवस्था में समाज में अधिकतर लोग दिखलाई समस्याओं को समाज दृष्टिकोण से देखते हैं और आपस में उद्देश्यों को पूरा करने के लिये मिल-जुलकर कार्य करते हैं। समाजता की इस भावना से व्यक्तियों के समबंध अधिक व्यवस्थित हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों में पारस्परिक जागरूकता बढ़ती है और समाजता घटता का विकास होता है। आदिदम समाज में यह घटता अधिक थी जिसके कारण आदि समाज अधिक संगठित होते थे।
भिन्नता से तात्पर्य रधियों-योग्यताओं, कार्य-क्षमताओं एवं स्वाभाव की भिन्नताओं से हैं। समाज में राणी व पुरुष की आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं जिसके कारण उनमें सहयोग की भावना का अधिक विकास होता है। सभी व्यक्ति अपने-अपने दायित्वों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। इसके अलावा जब सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं तो नवे-नये अविष्कार होते हैं। इस प्रकार समाज में भिन्न सदस्यों की योग्यता व कार्य करने के तरीकों की असमानता होने के कारण ही बहुत बड़ी संस्कृति का निर्माण हो सकता है। समाज में समानता व असमानता दोनों ही आवश्यक हैं।

इसलिए समाज में असमानता की अपेक्षा समानता का अधिक महत्व है। समानता के आधार पर ही अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं जैसे पाश्चिमिक, आर्थिक, धार्मिक कार्य समाज के आधार पर ही सहयोग, शांति व संगठन जैसे शृंगार का विकास होता है।

समाज में दोनों प्रकार की शक्तियों का समावेश होता है। एक तो वे जो मनुष्य को सत्ता में बाँधती है और दूसरी तो जो मनुष्य को पूर्वक करती है। समाज का निर्माण, सहयोग और संघर्ष से निर्माण होता है। एक और व्यक्ति-समाज, अपने कार्यों को प्रेम और सहयोग के आधार पर करते हैं और दूसरी तो अनेक कारण ऐसे भी होते हैं। जिनके कारण उनके बीच त्वर, घृणा और संघर्ष भी पनपते रहता है। एक समय के दो व्यक्ति निर्माण हो सकते हैं और दूसरे समय में वे किसी कारण या स्वार्थों एक-दूसरे के कट्टर श्रेणी में बन सकते हैं। प्रेम व शांति में आदर्श को, जो गाढ़ी के दो पहिये के समाज होते हैं। एक-दूसरे के श्रेणी हो जाना स्वाभाविक है। स्पष्टतः समाज में सहयोग तथा संघर्ष दोनों अलग-अलग तथ्य नहीं हैं। बल्कि अधिकतर दशाओं में सहयोग का अन्त, संघर्ष
में और संघर्ष का अंतः सहयोग में होता है। इसीलिए सहयोग व संघर्ष दोनों ही सामाजिक जीवन के दो अनिवार्य पहलू हैं।

समाज के सभी व्यक्ति एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति के लिये एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण वहीं एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और समाज के नियमों के अनुसार आचरण करते हैं। अगर समाज के सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर लेते तो संभवतः समाज का निर्माण ही नहीं होता।

समाज, समुदाय तक सीमित नहीं होता। पारस्परिक समाज की आधारभूत विशेषता ही पारस्परिक जागरूकता का निर्माण करती है। जागरूकता के बिना सामाजिक संबंधों का निर्माण किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता। विद्वानों, पशु और पक्षियों में भी काफी मात्रा में पारस्परिक जागरूकता देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ-चीटी बहुत छोटा सा प्राणी है लेकिन वह जिस संगठन और सहयोग से अपना कार्य करता है उसमें एक पूर्ण समाज की संभावना की जा सकती है। मनुष्य के अलावा सभी जीवों में पारस्परिक जागरूकता सामाजिक सीख से उत्पन्न नहीं होती बल्कि आनुवंशिक होती है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो परिस्थिति एवं आवश्यकता को देखते हुए चेतन रूप में समाज की स्थापना करता है।

समाज का तात्पर्य, व्यक्तियों के ऐसे समूहों से नहीं जो समाज रूप से धार्मिक-संस्कृति में विश्वास करते हैं और समाज कार्य करते हैं जैसे हिन्दू-समाज, मुसलमान-समाज, इस्लामी-समाज इन धर्मों की अलग धार्मिक क्रियाएँ हैं।
इनकी संस्कृति अलग-अलग है । समाज, एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सभी
सदस्य कुछ विशेष प्रकार के संबंधों के माध्यम से बंधे रहते हैं । इस दृष्टिकोण
से समाज को सरल तथा जटिल वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

समाज में सभी सदस्य अपनी स्थिति के प्रति जागरूक रहते हैं और इसी
की स्थापना करते हैं । ये सम्बंध, धर्म और लोकार्थों द्वारा सबसे अधिक प्रभावित
होते हैं । सरल समाज में सीमित संबंध होते हैं लेकिन फिर भी इसमें सदस्य
समाजता के द्वारा बंधे रहते हैं । सरल समाज में संघर्ष भी होता है तो किन्तु
सहयोग का महत्व सर्वाधिक है।

जटिल समाज से तात्पर्य ऐसे समाज से है जो बहुत छोटे-छोटे भागों में और
उपविभागों में विभाजित रहते हैं तथा प्रत्येक सदस्य सहयोग, स्वतंत्रता की भावना से
कार्य करते हैं । इसलिए संघर्ष अधिक होते हैं । जटिल समाज में पारस्परिक
निबंधन प्रत्यक्ष रूपीय अलग-अलग होती हैं । इसमें कहीं भी समाजता देखने
को नहीं मिलती। जटिल समाज का आकार जटिल होता है । आज के सभी
विश्वासी एवं नागरिक विशेषताओं वाले समाज, जटिल समाज का उदाहरण है।

समाज का प्रयोग कुछ ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता है जिनके
सदस्य, जिनका जीवन लगभग एक समाज होता है । समाज संबंधों की
व्यवस्था है। समाज कुछ विशेष प्रकार के संबंधों से बंधे हुये व्यक्तियों का ऐसा
समूह है जो उन्हें ऐसे व्यक्तियों से पृथक् करता है जिनके व्यवहार उनसे भिन्न
है।

समाज का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जो व्यक्तियों के पारस्परिक
जागरूक संबंधों, नियंत्रण-प्रणाली तथा व्यवहार के तरीकों से धीरे-धीरे अपने
आपमें विकसित होता रहा है । समाज की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि
जैसे-जैसे समाज विकसित होता है उसमें नियम कानून बढ़ते जाते हैं और वह जटिल होता जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में आदिम समाज अपनी प्रकृति से बहुत सरल थे, जबकि आज का समय समाज बहुत ही जटिल होता जा रहा है। समाज का वातावरिक घाट, व्यक्तियों के विकास के लिए आवश्यक है। इसलिये समाज में रहकर ही मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होना संभव है, समाज से अलग रहकर नहीं।

मानव जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न उसकी सामाजिकता है। कारण यह है कि तब तक की दृष्टि में रहकर यदि मानव का अध्ययन किया जाए तो वह सामाजिक जीव सिद्ध होता है। वह अन्य सामाजिक मनुष्यों के परस्पर सहयोग का आश्रय लेता है और अनेक उद्देश्य-थंगे चलाता है जैसे प्रजनन, कृषि ओद्योगिक कार्य। आत्मरक्षक में उसे सामाजिकता पर आश्रित रहना पड़ता है। इस स्थिति के फलस्वरूप अर्थात् कहा कहा कहा होता है कि समाज मानव-जीवन की रक्षा के लिए अनिवार्य है। मानव विवेकशील है। यही विवेकशीलता, सामाजिकता की प्रकृति है वह सामाजिक स्थापना को बनाये रखने में सक्षम है।

मानव, समाज में रहना अधिक पसंद करता है। अपने जीवन-यापन के लिए वह समृद्ध बनाकर रहता था। इस समृद्ध की प्रवृत्ति के विषय में मनोविज्ञानिकों के विभिन्न भाषण में हैं। कोई आत्मरक्ष में लिए तो कोई सहायबुद्धि के आधार पर मानव का समाज में रहना स्वीकार करता है। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि खाद्य सामग्री की बढ़ता और उसकी रक्षा के विचार से मानव ने समृद्ध बनाकर जीवन व्यतीत करना स्वीकार किया। कुछ का मत है कि मानव अपनी किसी क्रिया
की प्रतिक्रिया को जानने के लिये अथवा एकाकी जीवन से छुटकारा पाने के लिये समृद्ध बनाकर रहने लगा । अर्थातः व्यक्ति सुखद, सहयोग एवं विकास की दृष्टि से सफल जीवन व्यक्ति नहीं कर सकता जबकि समृद्ध में रहकर व्यक्ति अपने आपके संपूर्ण सुरक्षित आत्मनिर्भरता है एक-दूसरे के सहयोग के माध्यम से अपने जीवन को विकसित करके वह सफलता प्राप्त करता है ।

मानव प्रकृति में वात्स्यण की भावना भी महत्वपूर्ण है । माता-पिता में संतान के प्रति यह भाव तथा संतान में माता-पिता के प्रति आदर भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । संतान, परस्पर भाई-बहन के संबंध स्थापित कर प्रेम-बंधन में बंध जाती है जो केवल मानव-प्रकृति है । पशुओं में इस प्रवृत्ति का पूर्णरूप अभाव है ।

दाम्पत्य जीवन, सामाजिकता की आधारिता है । यही कारण है कि प्रकृति में दाम्पत्य जीवन के प्रति विशेष रूप है । दाम्पत्य जीवन के फलस्वरूप मानव में वात्स्यण की प्रवृत्ति प्रभाव होती है । मानव प्रकृति में उसका स्वर्ण भी विशेष रूप से उभरकर सामने आता है । मनुष्य समाज में रहकर अपने स्वर्ण सिद्ध करता है । समाज का अस्तित्व समस्त हो जायेगा तो मानव अपने व्यक्तित्व से किसी प्रभावित करेगा । विशेष रूप में मानव विवेकशील हैं, परस्पर व्यवहार के लिये वह भाषा का प्रयोग करता है ।

समाज का आधार मानव-प्रकृति है। मनुष्य एक-दूसरे के प्रति अवश्य आकर्षित होता है । यह प्रकृतिक सिद्धांत है कि मनुष्य समाज में साथ-साथ रहकर एक-दूसरे से अवश्य प्रभावित होते हैं । यही प्रभावित करना उन्हें एक-दूसरे की ओर आकर्षित करता है। समाज के आधार पर मनुष्य एक-दूसरे से संबंध
जरूर स्थापित करता है । यही परस्पर संबंध-भावना समाज का निर्माण करती है । संपूर्ण मानव जाति एक समाज है किन्तु संपूर्ण मानव जाति एक-दूसरे से पूर्ण रूपमें संबंध स्थापित नहीं कर पाती । समाज विचारोंबाले व्यक्ति परस्पर मिलकर रहना पसंद करते हैं । इसी पारंपरिक अमूर्त संबंध का नाम समाज है । किन्तु जिन व्यक्तियों से यह समाज बनता है उसके लिये समाज के स्थान पर समुदाय शब्द का प्रयोग होता है ।

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि समाज खंभाई, समाज लाभ एवं समाज विचारों की दृष्टि से मनुष्य का मनुष्य से संबंध स्थापित होना समुदाय है । अमूर्त समाज के मूर्त संगठन को समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है ।

मानव में चिंतन-भावना और प्रवृत्त अभिव्यक्ति होती है । मानव अन्य सामाजिक प्राणियों से भिन्न है और उस की यही भिन्नता सामाजिकता को जन्मदेती है । अरस्तु ने मानव को सामाजिक प्राणी कहा है । मानव एक ऐसी सामाजिक इकाई है जिसके अभाव में समाज के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती । समाज, व्यक्तियों के समूह से बनता है । व्यक्ति का पूर्ण विकास समाज में रहकर ही संभव है । मानव और समाज एक-दूसरे से एक हैं।

व्यक्तियों के समूह का परिणाम समाज है । व्यक्तियों से रहित समाज की कोई सत्ता नहीं । व्यक्ति का निर्माण सामाजिक व्यवस्थाओं, परंपराओं, विधाओं के माध्यम से होता है । इसलिये मानव एवं समाज के विषय में दो विचारधाराओं मिलती हैं । व्यक्ति को समाज से अलग करके विचार करना और व्यक्ति को समाज के साथ रखकर विचार करना ।

मनुष्य के जन्म से लेकर पालन-पोषण, मृत्यु तक सभी कार्य समाज में रहकर सम्पन्न होते हैं । समाज से अलग रहकर व्यक्ति के विषय में विचार करने
को अन्तिम चित्रण कहते हैं। यदि मनुष्य को जन्म के बाद समाज से अलग कर दिया जाए तो वास्तव में वह नाममात्र का मनुष्य रह जायेगा और उसमें मानवीय गुणों का अभाव होगा। इन गुणों के अभाव में उसको मानव नहीं कहा जा सकता। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं जिनमें जन्म के पश्चात् किसी कारणों वश बच्चा समाज से अलग हो गया। कुछ समय पश्चात् जब वह मानव समाज में आया तो उसकी स्थिति सामाजिक मनुष्य से भिन्न थी। भारत के प्रसिद्ध मुगल शासक अकबर, मिश्र के सेमेटिक्स तथा स्काटलैंड के शासक जेम्स चलवर्ध के प्रयोग उपयोग कथन के साथ हैं। अकबर के प्रयोग के लिये इस बच्चे समाज से अलग किया जब उसे मानव-समाज में वापस लाया गया तो वह समाज की भाषा बोलने और समझने में पूर्णस्पर्श असमर्थ था। कार्यरत हाउस नामक बालक का समाज से अलग होकर 1828 में पुन: समाज में आया। भेड़ियों की गुफा में 1920 में दो बच्चियों का भेड़ियों जैसे स्थिति में पाया जाता, 1938 में समाज से अलग पाई जाने-वाली अनामक बच्ची, 1954 में भेड़िये द्वारा पाले गये रामू का तहतका और 1956-57 में फिरोजाबाद में पाया जानेवाला भेड़िया-बालक पशुपालन इत्यादि ऐसे उदाहरण हैं जिनके आलोक में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि समाज से अलग रहकर मानव का अरित्त केवल इतना ही रह जाता है कि वह केवल मानव प्राणी है न कि समाजिक प्राणी के समाज सुसभ्य और सुसंस्कृत। मानव समाज में व्यक्ति के अरित्त का निर्माण एवं विकास होता है। व्यक्ति के अहं की समस्ति भी समाज में संबंध है। शुरू-शुरू में मनुष्य को किसी भी वस्तु का आधार नहीं होता वह अनुकरण के माध्यम से परिवार, पाश्चात एवं समाज से बहुत कुछ सीखता है। समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व का ही निर्माण नहीं होता अपने विकास होता है।
चैतन्य प्राणी, मानव ने आदि से ही प्रकृति रहस्यों को समझने अथवा खुलासे हेतु तर्क अनुभव एवं विचार का आश्रय लिया। जीवन-मृत्यु, आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, आत्मा का अमरत्व एवं नष्ठन रूप तथा मोक्ष इत्यादि से संबंधित प्रश्न आरंभ से ही मानव के मनस्थिक में उदार-पुनरुत्पन्न करते रहे हैं। जब वह उपयुक्त रहस्योत्तक अथवा प्रामाणिक समाधान प्रस्तुत नहीं करने और उसका अनुभव क्षीण हो जाता है तब मानव एक अलौकिक सत्ता से अपना संबंध स्थापित करता है। ऐसी सत्ता जो मानव से उच्च है और सम्पूर्ण सृष्टि की संज्ञान करता है।

इस विवेचना के आधार पर यह कहना उचित ज्ञात होता है कि धर्म इस अलौकिक शक्तियों में विश्वास करता है। यही विश्वास धर्म का मूल आधार है। इस विश्वास के आधार पर मानव शक्ति से इंतर कोई विशेष शक्ति मानी गई जो समस्त अलौकिक कार्य करने में सक्षम और सर्वशक्तिमान है।

अन्य सत्ताओं के अंतर्गत उद्वेद्ध पूर्ण भावनाएं अनुभव, आधार-संहिता, पौराणिक गाथाएँ स्वाभाविक विश्वास, धर्माधिकार एवं धार्मिक संस्कार इत्यादि तत्वों को स्वीकार किया जा सकता है। धर्म का अपना विभिन्न महत्व है। इस दृष्टि से यदि धर्म का अध्ययन किया जाये तो उसकी अनेक विषयों पर विशेषता दृष्टिगत होती हैं। जैतिकता एवं सत्ताओं का विकास, जीवन को एक निश्चित सांचे में ढालना, भावनात्मक सुख, सामाजिक एवं प्रार्थना में सहयोग, सामाजिक नियमों का महत्वपूर्ण साधन, लोकायतों को शक्ति प्रदान करना देशभक्ति की भावना की वृद्धि, तीव्र परिवर्तन को रोकने तथा व्यक्ति के विकास में सहायक इत्यादि विषयों को गणना की जा सकती है।

धर्म, विश्वासों पर आधारित है। धर्म का मुख्य उद्देश्य दुःख एवं सुख से
छुटकारा प्रदान करना भी है। इसलिए धर्म, व्यक्ति के अलील एवं भविष्य के बीच एक कड़ी के रूप में कार्यरत रहता है।

छायावाद का आरंभ 1919 से माना जाता है। यह वह समय था जब भारत में पहली बार प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद कुछ उद्योग स्थापित किए गए थे। उससे पूर्व भारत से कच्चामाल इंग्लैंड जाता था और वहाँ से वस्त्रुति तैयार होकर कई गुने दामों में बेची जाती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् नये उद्योगों की स्थापना के साथ-साथ समाज में नयी चेतना आयी और समाज के प्रभुत्व वर्ग, विशेषकर कवियों में पिछड़े हुए समाज के लोगों के प्रति संवेदना जागृत हुई। यह दुग छायावाद का दुग था। छायावादी कवियों ने बाल-विवाह, विधवा-विवाह नारी शोकन का विरोध किया। इन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए शिक्षा की अविवाहता पर भी बल दिया। इन्होंने सामाजिक कृतियों व अंधविश्वासों का जनकर विरोध किया। अफसूरों के प्रति इनके मन में विशेष संवेदना की जागृति हुई।

इन्होंने अनुभव किया कि समाज में आफसूरों को भले ही छुपा न जा सकता था हाँ उसके खून की प्रत्येक बूढ़ी को चूसकर उसे मारा जाता रहा था। इन कवियों को समाज की इन बुराईयों के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और इस प्रकार इन बिन्दुओं पर अपनी विचारधारा प्रस्तुत की।

1.1.1 बाल-विवाह एवं विधवा-विवाह

बाल-विवाह तथा विधवा-विवाह का विरोध बंगाल में बहुत पहले राजाराम मोहन राय के समय में किया गया था। किन्तु सामाजिक जागृति विन्यास वर्ग तक नहीं पहुँच पायी थी। वे अभी भी अपनी घिसी-पिटी लीला का अनुसरण
कर रहे थे । वहाँ विद्वानों का सिर मुड़कर सफेद साड़ी में उन्हें बनाएँ, प्रयाग वा मधुरा में छोड़ दिया जाता था । निरला, पंत, महादेवी और प्रसाद के काव्य में उनके प्रति संवेदना का स्वर लगातार दिखाई पड़ता है ।

doऽ रामकुमार वर्मा के काव्य में भी इसके लिए संवेदना प्रकट की गयी है।

सुमित्रानंदन पंत की रचनाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं:

यह रुख़ बद्द, लालसा नहीं जो नारी प्रतिमा में मूर्तित,
यह देवों के उर में भस्मी श्रद्धा प्रतीति से अभिषेकित !

जन इसे कला-मंदिर में निश करते अबतर्क दे स्थापित,
शिव सुंदर सत्य चयन कर चिर प्रिय चरणों पर करते अर्पित!

शत इंगित बनाते मुखर वृत्त, पलक रुक, छवि करती अंकित,

जीवन के सुख-दुख इसे देख स्वर गीतों में होते झंकूँ।

कवि ने यहाँ प्रकारांकर से नारी के हृदय की लालसा, उसके मन में विराट का संकेत करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि नारी चाहे विवाहित हो या विवाहित हो उसके मन में भी कुछ भवनाएँ होती हैं । इन भवनाओं का आदर करना सभी का कर्त्तव्य हैः

कैसे में जीवन के सिर्र कदम से उठ,
भाव तुषित भूग मरीविका से भोग गुफ्त हो,
आरोहण कर रजत-चेतना सोपानों पर
पहुँचूँ अवतर्क की उस प्रज्वलित भूमितक,

जिसके शान्त शिखर मोहित करते भू का मन,

चिर हिललित मानस के हस्तितेरक-से ।

1. सुमित्रानंदन पंत, गंधावली खण्ड : तीन पृ 55
2. सुमित्रानंदन पंत, गंधावली खण्ड : तीन पृ 84
रजत-शिक्षा से प्रभु कव्य रूप में पूर्व जी ने वुक के माध्यम से जीवन के
कीचड़ और मृग-मनोरीधिका का चित्रण किया है जो स्री-स्वर का प्रति-उत्तर है:

सुखदत

हमें मुक्त करनी है पहले काम चेतना
युग-युग की जटिल व्याख्याओं से जो पीड़ित,
रागद्वेष, कुश्ता, कर्कत की कृपण दृष्टि से
उसे बचाना है, गत नैतिक कोण बदलकर ।

युवती

घोर तन्त्रत रही आज मानव के भीतर ।

सुखदत के कथन के प्रति-उत्तर में युवती का यह कथन कितना सार्थक है
कि आज मानव के भीतर भयंकर क्रांति का संचालन हो रहा है। उस की दिशाएँ
चारों ओर व्याप्त हैं और उससे नारी का जीवन भी अछूत है।

1.1.2 नारी-शिक्षा के प्रति जागरूकता

इस युग में नारी शिक्षा के प्रति जागरूकता का उदय हुआ। समाज में शिक्षा
के प्रति चेतना का आरंभ हो चुका था। यहाँ से कुछ लोग इंग्लैंड आदि में जाकर
सिविल सर्विस की तैयारी करते थे। गांधी जी के प्रभाव से नारी के प्रति विशिष्ट
दृष्टिकोण का आरंभ हो गया था। उद्धर मार्क्सवादी चेतना ने समाज को नई दिशा
प्रदान की और 'सर्वहारा' के प्रति संवेदना जागृत हुई।

सारा प्रबुद्ध वर्ग इस दिशा में जागृत हो गया था। छायावादी कवियों के
काव्य में इस प्रकार की चेतना का स्वर बराबर दिखाई पड़ता है।

सन 1799 में बंगाल में फोर्ड विलियम कालेज की स्थापना के साथ
1. सुमित्रानंदन पंत, घ्रायावती खण्ड : तीन पृ 91
2. सुमित्रानंदन पंत, घ्रायावती खण्ड : तीन पृ 91
नारी-शिक्षा पर भी बल दिया गया। पहलीबार बंगाल में लड़कियों पर के चौके-चूले से निकल कर विद्यालय में पहुँची। इस आवंटन का वहाँ बहुत विरोध हुआ। किन्तु जागरूक समाज-सुधारकों ने इसका इटकर मुकाबला किया। इसके समान अन्य भी। बिधवाओं के बंगाल से बनारस, प्रयाग और वृद्धावन जैसे तीर्थ स्थानों में आने के फलस्वरूप नारी की हीदशा का आभास भी जागरूक उत्तर प्रदेशवासियों को मिला।

कवि अत्यंत संवेदनशील होता है। इसी कारण नारी के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण महत्व रखता है। इन्होंने नारी को देवी, सहचरी, माँ और प्राण के रूप में देखा, जो मानव के कल्याण का आधार होती है।

प्रसाद जी ने अपनी पहली पत्नी विश्ववासियों में श्रद्धा का स्वरूप देखा और यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि कामायनी की श्रद्धा प्रसाद जी की पहली पत्नी विश्ववासियों ही है।

पंत जी ने नारी के प्रति अपना विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदर्शित किया। निराला मनोहर और सरोज-स्मृति के रूप में नारी के मां और पुत्र का स्थान प्रदान करते रहे हैं। महादेवी तो स्वयं नारी थीं ही और उन्होंने नारी के सुख-दुःख भी खाले थे। इस प्रकार इन्होंने नारी-शिक्षा और नारी-उत्त्याज की दिशा में अपना स्वर तीव्र किया। नारी के प्रति इनकी रचनाओं के उदाहरण हैं :

मैं नींद-भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिंता निस्पन्द बसा
क्रद्र में आहत विश्व हंसा
नयनों में दीपक से जल,
पलकों में निर्मितियों मचली।
विस्तृत जन्म का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही,
उमड़ी कल थी भिग आज बही।

महादेवी वर्मा की उपर्युक्त पवित्रों से नारी के अन्तराल की तीव्रता
स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जिसका स्पष्ट जिस्प्रण है। नेंं० में दीपक जलते जरूर
हैं लेकिन पलकों से अंधू सतत बहते रहते हैं। यह असहाय, अनपढ़ नारी बहुत
शीघ्र ही इतिहास के गर्भ में खो जाती है। उसे कोई जानेवाला भी नहीं रहता
यह पढ़-लिखकर आत्मसम्बन्ध का जीवन जी सकती है। ऐसी व्यंजना महादेवी
के इस गति से होती है।

प्रसाद जी नारी को ध्वं भांते हैं:

नारी! तुम केवल ध्वं हो विश्वास-रजत-पन अपातल में,
पीयूष-श्रीत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।
प्रसाद जी ने नारी को ध्वं रूप में चित्रित किया है। वह उसे ध्वं और
पूज्य भांते हैं जिसके जीवन का आधार विश्वास है और िद्य में अमृत का स्रोत
है:

यह आज समझ तो पायी हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुंदर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।

1. महादेवी वर्मा, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएं, मै नौर भरी दुख की बदली।
2. प्रसाद, कामायनी, सर्ग
3. प्रसाद-प्रसाद की श्रेष्ठ रचनाएं, इतना न चमकला हो बाले पृ 102
प्रसाद जी नारी, शिक्षा के प्रति जागरूक दिखाई पड़ती हैं। जब वे श्रद्धा के माध्यम से यह कहते हैं कि मैं दुर्बलताओं के आधार पर नारी हूं, और सार्वजनिक सौन्दर्य मात्र को लेकर मैं सबसे हीन हूं। इस कथन से यह भी व्यंजना ही जा सकती है कि नारी का सौन्दर्य जहाँ महत्वपूर्ण है वहाँ उसका शिक्षित होना भी उसके लिए महत्वपूर्ण है।

"क्या कहती हो ठहरो, नारी! संकल्प अश्व-जल से अपने, तुम दान कर चुकी पढ़ने ही जीवन के सोने-से सपने।" नारी, अपने जीवन के सारे सपने पुरुष को समर्पित कर देती है पुरुष उसके समर्पण का दुरुपयोग करता चला आ रहा है। इस प्रकार नारी की दिशाहीनता का कारण मानव है।

अंसू से भीगों अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा,
तुम को अपनी स्मित रेखा से
यह संधि पत्र लिखना होगा।

नारी को अपने जीवन का संधिपत्र अपने हाथ से लिखना होता है। वह असहाय अवस्था में अंसूओं से अपने अंचल को भिगोती रहती है। इस दृष्टि

1. प्रसाद-प्रसाद की श्रेष्ठत्वनारी, इतना न चमत्कृत हो बाले पृ 104
2. वही प्रसाद-प्रसाद की श्रेष्ठत्वनारी, इतना न चमत्कृत हो बाले पृ 104
से भी उसका शिक्षित होना अविवार्य है।

खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा अंचल
गंगा-यमुना में आँसू-जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।

दैन्य जहित, अपलक नत चितवन,
अघरों में चिर नीरव रोदन,
युग के तम से, विषण्ण मन
वह अपने घर में
प्रवासिनी।

पंत जी भारत-माता के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए उसे उदास मिट्टी
की प्रतिमा कहते हैं क्योंकि भारतीय नारी शोषण का भरपूर शिकार बनी हुई है

चितित भूफूटे किरिजिं तिमिरांकित
नामित नयन नभ वाप्साच्छदित,
आजनश्री छाया-शशि उपमित,
झान-भूढ
जीता प्रकाशिनी।

1. पत्र, पत्र को विशेष रचनाएँ, भारत माता पृ 190
2. पत्र, पत्र को विशेष रचनाएँ, भारत माता पृ 191
भारत माला, गीता का प्रकाश करनेवाली थी जबकि आज वह ज्ञान-गूढ़ बन कर रह गयी है।

1.1.3 सामाजिक कुरूतियों, अंध विश्वासों का विरोध

इन छायावादी कवियों ने समाज में फैली हुई बुराइयों-भूत-प्रेत आदि जैसे अंध विश्वासों का जमकर विरोध किया। इस दिशा में निराला, पंत और प्रसाद तीनों का स्वर विशेष मुखरित रहा है।

छायावादी युग में समाज में कुरूतियों के अम्बार लगे थे। आप दिन बलि के नाम पर हत्याएँ होती थी जिससे पुत्र प्राप्ति हो सके। इस दिशा में सरकार और सामाजिक कार्यकर्ताओं सबी सक्रिय हो गए थे और इनको दूर करने का प्रयास हो रहा था। छायावादी कवियों ने अपनी शैली में इन बुराइयों का विरोध किया और समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया।

हम हैं भावी के निर्माता, मानवता के जीवन शिल्पी, भू के जनजान, जो युग-युग की लौह शंखला तोड़, वण संगीतित हुए हैं। बंधन मुक्त, नयी मानवता के रहस्य। पंत जी अपने काव्यरूपक -'फूलों का देश' के द्वितीय स्तर के माध्यम से सामाजिक परिप्रेक्ष्य को नई दिशा देने का संकेत करते हैं। वे रूढ़ियों की लोहे की शंखला तोड़ कर एक कठोर संगठन तैयार करते हैं, जिससे जन जीवन और मानवता का विकास हो वह बंधन मुक्त हो जाये।

हम वन पर्वत, सागर मस्तखल में मानव की विजय ध्वजा फहरायें। इस वन प्राकृत में जहाँ बनेले पशुओं की है गुहा, वहाँ हम सेना शिविर बनायेंगे निज, जहाँ खाने के नीड़ मात्र है, वहां जनों के वास बनेंगे। हम को सामूहिक

1. पंत, पंत ग्रंथावली, खण्ड तीन पृ-112
2. पंत, पंत ग्रंथावली, खण्ड तीन पृ-113
जीवन की आवश्यकता समतल मनुष्य बनाने को है बाध्य कर रही। तभी तुम्हारे से आदिम जन, युग जीवन के नव स्पर्शों से विकसित, संस्कृत हो पाएँगे।

हम अपने सामूहिक जीवन की आवश्यकता अर्थात भावना का निर्माण करने के लिये बाध्य हो रहे हैं जिससे आदिम मानव की बुराइयों को समाप्त कर हम सभ्य और संस्कृत बन जायें।

देखो, जनन भूलित मनुष्यता की छलना को,
 रक्त क्षीण, बिपर विषाणता को जीवन की।
 वर्तमान का भीषण उत्पीड़न है इनको
 निरंतरता से क़ुशल रहा। यदि एक बार तुम
 आँख खोलकर इन्हे देख लोगे जो सचमुच,
 करणा से विगलित उर हो, ममत्तम हो तुम
 सहम उठेंगे, पूलों के जन्म के वासी।

पात जी कहते हैं कि आज मनुष्य बंग, भूखों और शोषण का
 शिकार होकर तड़प रहा है, ऐसे शोषण-ग्रस्त मानव का उद्धार करना मानवता की
 आवश्यकता है।

भिव्य है, सब भिव्या जन में आज चुनौतिक,
 केवल सत्य मनुष्य के उर की घोर, घुणा है!?
 भिव्या जैसिकता, भिव्या आदर्श है सकल,
 जन पीढ़ा शोषण के हित जो उद्धत होते?
 केवल सत्य विषमताएं हैं, प्रतिहिंसा है,
 केवल सत्य अवृत पिपासा है तृषणा है!!
उबल रहा है देश गर्ल से जन-गण का मन,
भक्त रहा है क्रोध अभिन से मानव अन्तर,
कटने को है आज विकट ज्वाला का पर्वत,
थकेगा वह, उगलेगा दाहक लपटें को,
और जला देगा छल झूठ, कपट के जज्ज को,
मानव उर की नियमिता को, गृहसंस्कार को,
भस्मसात कर देगा जग के दू-स्वर्गों को।

पंत जी कहते हैं कि सारा संसार झूठ पर टिका हुआ है। सत्य से मानव को धृष्णा हो रही है। देश और आपसी मन-मुदाओं से मानव त्रस्त हो रहा है।
क्रोध की अभिन धातक रही है। आज ऐसे जन-जीवन के निर्माण की आवश्यकता है जो सबको सुखी बना सके:

कार्य हो तुम कार्य! जो उपदेश दे रहे
वंजे-भूखें लोगों की अध्यात्मवाद का!
कलाकार तुम नहीं, दुनिये दुर्बल उर में
वज्रयोग विद्वेष नहीं युग की प्रतिभा का!
अौल न उठा रखत तुम्हारा धृष्णा क्रोध से
शोपित पीड़ित मानवता की जनन व्यथा पर
dya द्रवित भी नहीं दिखायी देते हो तुम !!
जन-जीवन में विरंग, निरंत फूलों के वन में,
स्वप्न-लोक में रहते हो तुम आत्मलोक के।
पंत जी कहते हैं कि नंगे भूके लोगों को आध्यात्मवाद सिखाया जाता है। यह आध्यात्मवाद निरी कलपना है। शोभित और पीड़ित मानवता को यह बताना होगा कि उसे अपने स्वप्न-भाग से निकल कर बाहर आना पड़ेगा, तभी उसका उद्दार हो सकेगा।

्वेषरहित हो भू मन
शोभा स्वस्त जन जीवन,
सुजन स्वप्न भरे नयन,
कर्म जनित हो विराम!

विश्व शाल्ति बने ध्येय,
श्रेय प्राप्त रहे प्रेय,
लोक एक हो अन्यय

पावन जनवास, ग्राम!
शाल्ति नील विश्व गगन,
शाल्त हरित सिंधु गगन
शाल्त नगर परवत दन,
जन भू हो शाल्ति धाम!

मानव के मन को वेषरहित होना चाहिए। प्रत्येक मानव के मुख पर मुस्कान होनी चाहिए। आज विश्व शाल्ति हमारा ध्येय बन जाना चाहिए।

जहाँ मछ-ज्वाला धरकती
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन-घटियों की,
मैं सरस बरसात रङ्ग।

1. पंत, पंत मंदावली, खण्ड तीन, पृष्ठ 121
जहाँ मरुस्थल की लहू जल रही हो वहाँ मानव जीवन में सरस वर्षा की अपेक्षा करते हैं।

पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जा रहा झुक,
इस झुलसते विश्व-दिन की।

वे चाहते हैं कि आज जो आग चारों ओर पैठ रही है वह शान्त हो जाए और चारों ओर बसन्त ऋतु का प्रसार हो।

चिर लिखा नीर-थर से,
प्रतिप्रथित अशु-सर से,
मधुप मुखर नरद - मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन।

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।

दुःख का समुदाय उसका नाश, तुम्हारे करम का व्यापार।

विश्व मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर मन्द

मिला था वह पवन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चन्द।

प्रसाद जी कहते हैं कि जीवन के सारे अतिवादों को छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुसरण करो जिससे चारों ओर विश्व मानवता का जयघोष होता रहे।

1. प्रसाद, प्रसाद की श्रेष्ठ रचनाएं, तुमुल कोलालन कलह में, पृष्ठ-85
2. प्रसाद, प्रसाद अद्यावली खण्ड 1 अरी बरखाण की शाल्त कक्षर (पृष्ठ-338)
खड़ी है दीवार जहाँ को पहेलकर,
बोलते हैं लोग ज्यों झूँघ फेलकर
इस गणन में नहीं दिनकर

नहीं शाशपर नहीं तारा'।

निराला जी कहते हैं कि चारों ओर दृश्यता की दीवार खड़ी हुई है लोग
एक-दूसरे से झूँघ फेलकर बात करते हैं। ऐसे परिस्थित में न कोई सूर्य है न कोई
चन्द्रमा है और न कोई तारा है।

वे जो यथाज्ञ के से क्षयर
पद फटे बिवाह के उधार
लायें भक्त ज्यों, पिये तेल
चमकी गूँजे से सहेल
निकले, जी लेते, घोर गर्व,
उन चरणों की मैं यथा अभ्य,
कल प्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूर्ण, ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह़।

निराला जी सरोज-स्मृति में अपने काज्ञ-कुञ्ज ब्रह्मा की मानसिकता
पर आधार करते हुए कहते हैं कि जिसें जुँते तक पहले की तमीज नहीं है वे
आज समाज के चर्चाध्य बने हुए हैं। इनसे समाज का छुटकारा मिले बिना सुख
शक्ति नहीं भिल सकती।

1. निराला, निराला की श्रेष्ठ रचनाएँ, गहन है यह अध्यकाराख, पृष्ठ-142
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म यहे जत सदा मात्र
इस धर्म पर मेरे काय सकल
hों भ्रष्ट शील के-से शरदल।
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर करता मैं तेरा तर्पण'

वे ऐसे धर्म को भी पसंद नहीं करते जो चुराइयों पर वज्रपात न
कर सके।

कल्पना का ही अपार समुद्र यह,
गरजता है घेरकर तबु, रुद्र यह,
कुछ नहीं आता समझ में।

कहाँ है श्यामल किनारा।

निराला जी कहते हैं कि चारों ओर कल्पना का समुद्र प्रवाहित हो रहा
है। कब्रेस्टाएं चारों ओर व्याप्त हैं। कहीं कोई किनारा दिखाई नहीं पड़ता है।

प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की,
याद जिससे रहे वंचित गेह की,
कोजता फिरता न पाता हुआ,
मेरा हृदय हारा?

निराला जी कहते हैं कि आज देह की चेतना को खोकर हारे हुए हृदय
से चारों ओर घूम रहा है कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिल पा रही है।

1. निराला, निराला की श्रेष्ठ रचनाएँ, गहन यह अन्ध कारा, पृष्ठ-142
2. निराला, निराला की श्रेष्ठ रचनाएँ, गहन यह अन्धकारा पृष्ठ-143
मरा हूँ, हजार मरण
पाई तब चरण-शरण।
फैला जो दिमिर जाल
कट-कटकर रहा काल,
औसुओं के अंधुमान,
पड़े अभिल सितामरण’।

निराला जी आध्यात्मिक दृष्टि के माध्यम से यह कहते हैं कि मैं लगातार कितनी बार मरा हूँ। चारों ओर अंधकार फैला है और औसुओं के चमकते कण में चारों ओर विकरे रहा हूँ।

1.1.4 निम्नवर्ग के प्रति संवेदना
कवियों का संवेदनशील हदय निम्नवर्ग की पीड़ा और कष्टों से लगातार पसीजता पीड़ा जता रहा है। निराला जी की संवेदना दृष्टि हैः

खड़हर ! खड़े हो तुम आज भी?
अदभुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !
विस्मृति की नीद से जगते हो क्यों हरे-कठणाकर, कठणामय गीत सदा गाते हुए?
पदव पंवरण के साथ ही²।

निराला जी ने प्रतीकों के माध्यम से इस कविता में निम्न वर्ग के

3. निराला, निराला की श्रेष्ठ रचनाएँ, मराठी हजार भरण पृष्ठ-165
2. निराला, अनामिका, पृष्ठ - 29
लोगों को संभोग से सम्बोधित किया है। जो आज खड़े तो हुए हैं लेकिन पुराने और मलिन सजाय को लेकर, करणा में गीत गाकर, समाज को विराम की दीवार से जगाते हैं और जब बाग फल खाने का संघर्ष करते हैं। निराला यहाँ निम्न वर्ण के प्रति अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति करते हैं।

निराला, इलाहाबाद के रांची पर चिलचिलाती गर्मी के लू में ‘पत्थर तोड़ने वाली स्त्री’ का अत्यन्त संवेदनशील स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। पत्थर तोड़ने वाली यह स्त्री बीच-बीच में अट्ठलिकाओं को भी देखती जाती है।

देखते देख गुम्बे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार,
देखकर कोई नहीं,
देखा गुम्बे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
सुनी मैं वह नहीं जो थी सुनी झंकार’।

इस कविता में कवि ने पत्थर तोड़ने वाली स्त्री के प्रति अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार निम्नवर्ण के प्रति अपनी विचारधारा को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।

1.2 धार्मिक चेतना

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अंग्रेजी संरक्षण के प्रभाव में भारतीय परिवेश में भी धार्मिक चेतना का नये रूप में विकास हुआ। इस माध्यम से भी समाज में धर्म के प्रति नया दृष्टिकोण पैदा हुआ। मार्क्सवादी प्रभाव से धर्म को कहीं-कहीं नकारा भी गया और इसके स्वरूप पर आघात भी

1. निराला, अनामिका पृष्ठ-80
किया गया। इस घटना का प्रसार सभी घरों में हुआ।

इसाई धर्म के प्रचार-प्रसार और भारत के प्रबुद्ध वर्ग के अंग्रेजी समाज के सम्पर्क में आने से जहाँ एक ओर धार्मिक अंधविश्वासों, उद्धियां और परम्पराओं पर गहरी चोट हुई वहाँ साथ-साथ इसाई धर्म से यहाँ के हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मों पर प्रभाव पड़ा। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण भिंसन और इस्लामिक धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से सभी विचारधाराएँ एक दूसरे के सम्पर्क में आयी और धर्म के नये स्वरूप का सूचनापत्र हुआ।

1.2.1 परम्परागत उद्धियां का विरोध-

छायाभाँक कवियों ने धार्मिक विपर्ययों और परम्परागत उद्धियां का खुलकर विरोध किया। इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से नयी जागृति पैदा की। धर्म की सही गति मान्यताओं पर गहरा आघात किया। इनके काव्य के कुछ उदाहरण हैं:

किसी स्वार्थी मतवाले हाथी से हा! पद दलित हुई वही कुमुदिनी,

ग्रीष्मकाल तापितज जिन में परिमितित हुई छिल्लि पत्र मकरन्दही हो गई न शोभा प्यारी है।

पढ़ी कण्टकाकीर्ण मार्ग में कालचक्र गति न्यारी है।

प्रसाद जी ने परम्परागत उद्धियां का विरोध करते हुए प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि कुमुदिनी गर्भी के ताप से तपकर अपनी शोभा को खो देती है और काटों से भरे कालचक्र का शिकार बना जाती है। परम्परागत उद्धियां, समाज में दुरसार प्रदान करती हैं:

1. प्रसाद, प्रसाद भवावाली खण्ड-1, पृष्ठ 183
2. विराला, अनामिका पृष्ठ-29
ख़ंडहर! खड़े हो तुम आज भी?
अद्वैत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज!
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें -
करणाकर करणामय गीत सदा गाते हुए?
पवन संवरण के साथ हीं।
निराला जी ने ख़ंडहर के प्रतीक के मध्यम से परिव्यक्त और विस्मृति मानव समाज के प्रति संदेश व्यक्त करते हैं। ख़ंडहर का अपना अलग महत्व है और यह मानव को सोते हुये जगा देता है।

हो मलते कलेजा पड़े, जरा-जीर्ण,
निरंभेष नयनों
बाट जोहते हो तुम भूल यह की
अपनी सन्तानों से बूढ़े भर पानी को तरसते हुए?'

परमपरागत सुझावों का विशेष करते हुए वे यह दर्शते हैं कि ख़ंडहर को बूढ़े भर पानी के लिए तरसना पड़ता है। एक दिन वह इसी विचार में खौफ नहीं समाप्त हो जाता है।

यह अध्याकार का घोर प्रहार हो रहा है। यह न्यूनतम विवेक, विवेक, 
फिर मानवीय बन जाओ रही जड़ भूत शक्तियों अभिसापित,
तरुणों के सिर पर पुष्प मुकुट ज्यों गंध पवन उर में मादन,

1. निराला, अनामिका, पृष्ठ 29
2. पंत, पंत प्रेमावली खण्ड-3, पृष्ठ 50
जीवन से मन से पूर्व रहें तुम नव श्री शोभा में चेतन ² !
पंत जी अंधकार के माध्यम से परम्पराओं का विरोध करते हैं । जिसके होते पूरी मानवता अपनी शक्तियों को खोकर पराजित हो जाती है ।

1.2.2 धार्मिक शोषण का विरोध

छायावादी युग एक प्रकार से नवीन चेतना का युग था। इस युग में नये भाव और विचारों का प्रचार, प्रसार होता गया । नये समाज को नई दिशाएँ मिली। पण्डितों तथा नौलियों के धार्मिक शोषण के प्रति पूरे देश में नई जागृति आयी । इस जागृति का प्रभाव संवेदनशील छायावादी कवियों पर पड़े बिना न रह सका और पंत, प्रसाद और जिरला आदि सभी कवियों ने धार्मिक शोषण का अपने काव्य में जमकर विरोध किया ।

3. जाति-पालित की विरोधमात्र का विरोध :

पतित हो जन्म से, या कर्म ही से ही क्यों नहीं होवे
पिता सबका वही है एक, उसकी गोद में रोवे
पतित पदपाठ में होवे
तो पावक हो ही जाता है
पतित है गर्त में संसार के जो स्वर्ग से खासका
पतित होना कहे अब कौन सा बाकी रहा उसका
पतित ही को बचाने के
लिये, वह दोह आता है'।

प्रसाद जी ने अपनी इस कविता में ईश्वर को पतित-पावन कहते हुए यह स्पष्ट किया है कि कोई जन्म से पतित हो या कर्म से वह ईश्वर तो सभी पतितों को बचाने के लिए दोह आता है, जब वह ईश्वर ही पतित पतिपावन है तो

1. रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद ग्रंथावली, खण्ड-1, पृष्ठ-189
फिर समाज के लोगों को पतित बनाने में आपत्ति किया है।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिंदतार
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
युद्धी मैंने वह नहीं जो थी युद्धी झंकार।'

निराला जी इन पक्षियों में जाति और कर्म से पतित पत्थर तोड़नेवाली युद्धी के प्रति अपनी संवेदना की अभिव्यक्ति करते हैं जो चिलचिलाती गर्मी की धूप में पत्थर तोड़ती है और बीच-बीच में बड़ी अद्वितीयताओं को भी देखती जाती है।

1.3 आर्थिक चेतना

छहवाद युग में औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ आर्थिक चेतना का भी आरम्भ हुआ। बड़े-बड़े परिवार दूरे और छोटे परिवार बड़े। भारतीय समाज के लोग अपने जन्म-स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों पर गए। वैसे यह स्थान उनको रास नहीं आया लेकिन उनकी यह मजबूरी थी कि वे मालिकों और जमीदारों के यहाँ बधाई मजदूर का जीवन बिताकर अपने कर्म का बोझ धोने के लिये अपनी पीढियों को शिकार बना गए। जहाँ एक और इस युग में आर्थिक क्रांति का सूत्रधार हुआ वहीं दूसरी ओर समाज में शोषण की प्रतिक्रिया बढ़ती चली गई। अपने जन्म-स्थान से सैकड़ों मील दूर मजदूर लगातार शोषण का शिकार होता गया।

1. निराला, अनामिका पृ 80
वैसे इस शोषण के मार्गस्थल के प्रभाव से बाद में मजदूर क्रान्ति का सूत्र-पात किया और समाज में शोषण का विरोध बढ़ा चला गया।

छयावादी कवि अपने युग की विसंगताओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। इस प्रभाव के पहले-शुरू कुछ कवियाँ में आर्थिक शोषण के विरोध में स्वयं लगातार दिखाई पड़ने लगा।

इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं:

dेखो, नजर शुष्क कमजोरता की छलना को,
रक्त शीण, निघुश विषयिता को जीवन की!!

वर्तमान का भीषण उत्पीड़न है इनको

निर्मिता से कुछल रहा! यदि एक बार तुम
अँख खोलकर इन्हें देख लोगो जो सचमुच,
कठिना से विचरित उर हो, समर्थ हो तुम
सहम उठेंगे, हे पूलों के जन्म के वासी।

पंत जी शोषित मानव के प्रति अपनी संवेदना की आभिज्ञता करते हैं जिन्हें उस युग का उत्पीड़न निर्मिता से कुछल देता है जिन्हें देखकर कर का कोई कितना भी संवेदनहीन हो उसके नाम में भी संवेदना जग जाती है।

प्रथम बार जब युग-युग का भू कल्प कर्म
आज पुल रहा प्रण रीढ़ जनवण के मुख से,
खदे हो रहे जो अगणित पैसे पर फिर से
देन्य गर्त से निकल, असंख्य भुजाएँ फैला,
अंगड़ई भरते प्रण जीवन लपटे-से,

1. पंत, खण्ड 3 पृ 113
अभिन शस्य-से लहरा भू-पर प्राण प्रतीतिहित,
ऐसे युग में एक ऊर्ध्वीक दिव्य संचरण
जन्म ले रहा अंतररतम में युग मानव के,
इन पक्षियों में पंत जी ने दीनता को गर्त से निकलते हुए दिखाया है
जो अनेक भ्रुजाएं पैलाकर धरती में आण से तपकर तैयार हुए अनाज को खाने
के लिए उद्दत्त है या यह कहा जा सकता है कि गरीबों के खूल पसीने से पैदा
हुए अनाज को खाकर मानव आज पुष्ट होता है किंतु उन गरीबों के बारे में कुछ
भी नहीं सोचता है।

धन्ये, मैं पिता निर्धरित था,
कुछ भी तेरे हित न करे सका!
जाना तो अर्थगमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-कार्य
लख कर अनन्त आर्थिक पय पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुभिते, पहनाकर धीनाशुक
रख सका न तुझे अतः दयामुख।

इन पक्षियों में निराला ने अपनी आर्थिक कमजोरी को अभिव्यक्त करते हुए
कहा है कि मेरा पिता होना बेकार गया क्योंकि मैं अपनी बेटी सरोज को धन से
सुखी न रख सका।

1.3.1 अंग्रेजों की आर्थिक नीति
छायावादी युग में अंग्रेजों की आर्थिक शोषण-नीति समाज को विशेष
प्रभावित कर रही थी। उस नम्बर के अंग्रेज भारत का आर्थिक शोषण करते थे। छायावादी कवियों ने अपनी विशिष्ट शैली और प्रतीकों के माध्यम से इन का विरोध किया और अपने काव्य में इसे विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

ध्वंस शंशा कर देंगे हम इन आदर्शों की।

भारत मोक्ष पंचवटी को, भक्तिता जो

मानव नात को जित जन स्त्रिय मूर्तियों के पीछे।

बाहर भूमि की लौहमुड़ी फिर अन्तर जग का

नव निर्माण करेगी जीवित आदर्शों से ।

हम दुनिया बांस, बजेगी तब व्या बंशी?

सत्य व्याह की उद्घोषक हैं। शेष छुट हैं।

पंज जी ने यहाँ उस समय के अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के प्रति अपने

विद्रोह का स्वर मुखित किया है। उन्होंने अपने आपको सत्य और व्याख्या का

उद्घोषक मानते हुए स्पष्ट किया है कि हम उस नीति का लगातार विरोध करते

रहेंगे जो हमारे आर्थिक हितों पर आघात करेगीः

श्रीवाण का न छीला कभी अह्नक,

मैं लख न सका ते दुग विपन्नः

अपने आँसूओं अत: वित्तकः

देखें हैं अपने ही मुखितर ।

सोचा है नत हो बार-बार ।

---

1. पंज, पंज प्रद्याली, प्रण - 3 पृ 116
2. निराला, अनालिन, पृ 119
निराला जी ने प्रकारान्तर से युगीन आदिक शोषण का विरोध किया है और स्पष्ट किया है कि गरीबों का अन्न छीनना सबसे बड़ा दुराचार है।

1.3.2. जमींदारों की शोषण नीति

अंग्रेजों का आक्रमण पाकर जमींदार भी भारतीय जनता के शोषण में दबे हुए थे। छयावादी कवियों के काव्य में इस शोषण के विरोध को प्रताकारान्तर से प्रदर्शित किया गया। जिसके कुछ उद्देश्य हैं:

हम हैं भावी के निर्माता, मानवता के।
जीवन शिल्पी, भू के जनगण, जो युग-युग की।
लोह शृंखला तोह, आज संगठित हुए हैं।
बव्य गुलत, नयी जन मानवता के रक्षक।

यहां पर पंज जी ने युग मानव को नई मानवता का रक्षक बताते हुए एक प्रकार से शोषण नीति का विरोध किया है।

1.3.3 पूजीवाद का विरोध

छयावाद के अन्तिम दिनों में मार्क्सवाद का प्रभाव विशेष दिखाई पड़ता है। पंज जी के बाद के काव्य में इसे विशेष स्वर मिला है।

वैसे इस प्रभाव को छयावादी युग की समाप्ति के दिनों की उत्पन्ना माना जा सकता है।

पंज और निराला के काव्य में इस प्रकार के भाव देखने को मिलते हैं:
पूजीवाद उठ हिंसा का शुक्रकेठु ध्वज।
लिये लोक संहार घोर अणु बुद्धि में विकट।
फिर ललकार रहा धर्ती की हरि शान्ति को,
जन समुद्र के उर को नभ चुम्बी लहरों पर।
दुर्दमसङ्क्लिष्ट से शासन करने! हाय दुराशा!!

1. पंज, पंज ग्रन्थावली खण्ड-3 पृ 112
2. पंज, पंज ग्रन्थावली खण्ड-3 पृ 132
इन पक्षियों में पूंजीवाद का नाम लेकर पंत जी ने उसे धूम के तु खडा बताया है जो ऊँची-ऊँची लहरे उठा कर दुर्भिस्थित्व करता जाता है {यह कितनी बढ़ी दुरशा है।

हो मलते कलेजा पड़े, जरा-जीर्णा,

निर्गितीज नयनों से

अपनी संलयनों से बूढ़े भर पानी को तरसते हुए?

जिराला जी ने यहाँ प्रकाशकर से जीर्ण मानव का उल्लेख करते हुए एक प्रकार से पूंजीवाद का विरोध किया है।

1.4 राजनीतिक चेतना

1.4.1 ब्रिटिश साधारणवाद का विरोध

राजनीतिक चेतना का सीधा सम्बन्ध आर्थिक चेतना और राजनीतिक संस्कृति से होता है। भारत में उस समय अंग्रेजों की साधारणवाद की जीति का प्रसार हो रहा था। ऐसे समय में छायावादी कवियों ने अपने काव्य में विरोध तो किया है किन्तु वे खुलकर सामने नहीं आ सके थे उन्होंने अपने प्रतीकों के माध्यम से इस ओर संकेत किया है।

प्रसाद जी ने अपनी ‘बीती विभावरी जाग री’ कविता में इस तरह का संकेत दिया है:

बीती विभावरी,

जागरी!

अंग्रेज नज–तल में भिगो रहीं

1. निराला, अनामिक, पृ 29
तार-घट ऊष्मा नागरी!
तू अबतक सोई है आली
आखों में भरे विभावरि।

1.5 सांस्कृतिक चेतना

सांस्कृति और भाषा में गहनतम एवं आत्मरिक सम्बन्ध होता है। भाषा अपने प्रवाह-काल में सांस्कृतिक संबंधों से स्पष्ट होती रहती है। यह अभिव्यक्ति का साधन है और सांस्कृतिक इसका साध्य। साध्य-द्वारा साधन में संस्कार से अर्थ-रूप सिद्धि प्राप्त होती है। परिवर्तन आकाश-अन्न-वायु-जल-पृथ्वी की संपूर्ण तन्मात्राओं को भाषा स्थूल रूप प्रदान करती है। यही स्थूल पुन: अर्थ के धारात्मक पर विचार एवं भाषा का अंग हो जाने पर सूक्ष्म हो जाता है।

प्रत्येक भाषा की इकाइयों के प्राथमिक अर्थों में हिंसकता का कारण भी सांस्कृतिक वैभवत्व होता है। हिंदी में ‘जो’ सांस्कृतिक परिस्थितियों में घिसते-घिसते जहॉं केवल गाय एवं इंद्रियवाची रह गया है वहां सांस्कृतिक गतिसूचक अर्थ का घोटाल आज�ी होता है।

सांस्कृति, साहित्य को रूपाकार प्रदान करती है और साथ ही भाषा को सूक्ष्म एवं अर्थवती बनाती है। भाषा को यह अर्थ-संप्रेषणीयता, काव्य-भाषा की मौलिक आवश्यकता है। सांस्कृति, भाषा और साहित्य का विकास परस्पर, प्रभावित होते हैं। सांस्कृतिक परिवर्तनों को आत्मसात करके कवि युगीन संबंधों को जनश्रृंखला प्रदान करता है। ये व्याख्याएँ श्रेष्ठ काव्य का मूल गुण और विशिष्ट क्षमताएँ बन जाती हैं। ये अर्थ की गतिशील बनाती हैं और काव्य-भाषा के

1. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त
आत्मरिक स्वरूप को युगानुपत्ता प्रदान करती है।

चोदहवी-सोलहवी शती में सांस्कृतिक संक्रमण चरम सीमा पर था। युगीन साहित्य में सांस्कृतिक समावय एवं संघर्ष व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है। भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास बहुविचित्र संस्कृतियों के एक होने की कहानी है। जहाँ इतिहास हमें पीछे ले जा सकता है वहाँ तक यह बात बहुत ही स्पष्ट दिखाई देती है। न जाने कितनी जातियाँ इस देश में आती रही हैं। कुछ दिनों तक स्थानीय जनता से उनका कठोर संघर्ष होता है। ऐसा जान पड़ता है कि यह भव्यकर संघर्ष कभी समाप्त नहीं होगा, परन्तु कुछ ही दिनों में जातियाँ में संघर्ष समाप्त हो जाता है। वे एक-दूसरे से बहुत कुछ ले-देकर एक ही संस्कृति को अनुवर्तित कर जाती हैं। केंद्रीय भूमि में जिस प्रकार एक के बाद दूसरे परते जमती रहती है और अन्य में एक उर्वर घरती का निर्माण होता है, उसी प्रकार हमारे इतिहास में बिभिन्न मानव मदहलियों की संस्कृतियों की प्रत्येक जमती रही हैं और एक महान भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है।

इस संबंध में विन्दुओं विचार किया जा सकता है।

1.5. भाषा

भाषा के दो पक्ष माने जा सकते हैं:

- बाह्य पक्ष तथा आत्मरिक पक्ष। बाह्य पक्ष, क्षेत्र-विवेश तक सीमित रहता है जबकि आत्मरिक पक्ष विशिष्ट भाषा को सार्वभौमिक धरोहर पर प्रतिष्ठित कर देता है। भाषा अर्थव्यवस्था अभिव्यक्ति तक आते-आते अपने एकाकीपन को त्यागकर विशिष्टता ग्रहण करती है और अंततः सार्वभौमिक हो जाती है। आरम्भ में भाषा-विधान में भाषा के अक्षर को खंड-खंड में विभक्त करके विचार किया जाता

1. प्रो. शाहिद्द्द्द, सार्जनात्मक गद्द-भाषा और काव्य-भाषा पृ0 68-73
है किन्हूँ अब इस पर खंडों में विचार करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम हो रही है। भाषा का बाह्य रूप इसके आत्मात्मिक रूप को समझने में सहायक होता आवश्यक है किन्हूँ भाषा की सही गति की पहचान के लिए मात्र बाह्य पक्ष (शब्द-भावना या सम्बन्धप्रकृति) ज्ञान से काम नहीं चल सकता। धार्मिक, पद्धतिक, तथा वाक्य-संरचना का ज्ञान भाषा की आत्मरूप प्रकृति तक पहुँचने के उपादान अवश्य है किन्हूँ इन्हें साध्य मानकर समझा कर लेना पर्याप्त नहीं होना चाहिए।

भाषा की परिभाषा में प्रयुक्त शब्दावली व्यक्ति=सापेक्ष होती है। भाषा के विषय में लगभग सभी का व्यक्तिगत एवं विशिष्ट मत होता है। कोई इसे अर्थात ध्यन, कोई सामाजिक निर्धारक ध्यन तथा कोई सम्प्रेषण में प्रयुक्त सुकुल-उच्चरित श्रवणशक्ति-सुहीत प्रतिलक-समूह मानता है। कभी-कभी हादसों, आंत्रिक तथा शारीरिक अवक्ष्यों की मुदाएँ भी भाषावादी प्रतिकों का कार्य करती है। भाषा की परिभाषा में प्रयुक्त शब्दावली-वैविध्य के पीछे यह सभी स्तरीकर करते हैं कि इस विषेषता में व्यक्ति-वैतनाओ अथवा व्यक्ति-विशेष संदेह क्षमशील रहता है।

भाषा और सामाजिक चेतना गहनत: संभव है। मानव चेतना की मूलभूत आवश्यकता को भाषा पूरी करती है। भाषा का जन्म सामाजिक चेतना के जन्म के साथ-साथ हुआ करता है।

सामाजिक परिवेश में मानव-चेतना, व्यवहारिक तात्त्विक रूप में अन्य व्यक्तियों के लिए जीवित रहना चाहती है। इसी कारण यह विशिष्ट एवं व्यक्ति-सापेक्ष भी हो जाती है। चेतना की व्यक्ति-सापेक्ष भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी व्यक्ति-सापेक्षता बना देती है।

भाषा की अवस्थिति प्रमाण-साध्य नहीं है। दर्शन की शब्दावली में तो कहा जा सकता है कि भाषा वास्तव में है और नहीं। भाषा को समवाद-समुच्चय माना जा सकता है। भाषा-संसार के लिए एक से दो का होना अविचार है। संसार में
जब केवल मनु का प्राक्षेप हुआ था और उसके आलापों को सुननेवाली शतरुपा नहीं थी तब तक मनु का एकलाप भाषा का रूप नहीं ले पाया था । मनु-शतरुपा का संवाद ही भाषा को जन्म देसकर । संसार में यदि एक ही व्यक्ति होता तो भाषा का जन्म कदापि समभाव नहीं था ।

भाषा को मानवीय विचारों का भौतिक अंकन माना जा सकता है। मनुष्य अपने विचारों को मुखाकृतियों, एवं आंगिक ध्वनि-संकेतों आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। या यों कहिए कि मानव-संप्रेषण आंगिक भाषिक अभिव्यक्ति पर आधारित है। ऐसा संप्रेषण स्थान-विशेष के पंचभुजों की तन्त्रमाध्यमों से प्रभावित होकर नित्य विशिष्ट प्रकृति भाषा को जन्म देता है। पूरे विश्व में आज ऐसी लघुभाषा तीन हजार प्रकृति भाषाएँ हैं । भारत में इनकी संख्या 872 है। जिस प्रकार भूत-संप्रेषण के अल्पभेद के साथ भी वैशिक भौतिक संयुक्त लघुभाषा एकता है उसी प्रकार प्रत्येक प्रकृति भाषा अभिव्यक्ति के धारालर पर विचार-संप्रेषण का सार्वभौमिक साधन भी होता है।

भाषा, मानवीय विचारों एवं भाषों की सम्पूर्ण प्रक्रिया का फल है। यह वस्तुओं, घटनाओं तथा सिद्धांतों को नाम प्रदान करती है। या यों कहिए कि यह सामाजिक परिवेश की वस्तुओं पर लेखिल लगाता है। मानव-संप्रेषण के प्रभुख साधन के रूप में भाषा, मानवीय संवेदनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यह अर्थतः आर्थिक आंशिक पृथियों विकलांग व्ययों का साधन भी बनती है। इस दृष्टि से यह मानव-बृद्धि एवं संस्कृति के विकास का माध्यम और सूचक बन जाती है। भाषा का विकास, मानवीय भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति गतिशीलता के साथ-साथ हुआ करता है। जिस समाज में जितनी ही भौतिक एवं आध्यात्मिक स्थिरता होगी उसकी भाषा भी उतनी ही अविकसित होगी ।
भाषा, एक और अपने विचारों को गुप्त रखने का साधन है कि दूसरी ओर यह अभिव्यक्ति के धरातल पर आकर विचारों का महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण भी बनती है। इसे भाषा की दृष्टात्मक स्थिति कहा जा सकता है। मानवीय भाषा विशेष विशेषता युक्त भी है क्योंकि मानव अंक शब्दों का जादूगर है तो दूसरी ओर विचारों का योजना। विचारों के गोपन और अभिव्यक्ति के प्रशिक्षण की भाषा की यह दृष्टात्मक स्थिति इसे न तो पूर्ण जादूगर ही रहने देती है और न ही संवेदना, भाव अथवा विचार की सफल अभिव्यक्ति करनेवाला योजना ही। संभावनाः यही कारण हो सकता है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ भाषा की अभिव्यक्ति की शक्ति लगातार क्षीण होती जाती है। आज आदिम भाषा के शब्दों की अभिव्यक्ति की जानकारी के लिए विशद व्याख्या की आवश्यकता होती है।

भाषा, व्यंजन और परिवेशीय अनुभूति की अभिव्यक्ति के तत्त्व के बीच गतिशीलता रहती है। इसी कारण भाषिक संप्रेक्षण को उसभें नकारा जाता रहा है। आर्थिक स्तर पर भाषिक संप्रेक्षण कोई सशक्त विविध प्रमुखता करने में असमर्थ रहता है। यही यह नितांत अकेला रहता है। उस सत्य के स्थायित्व के लिए समाज का होना परमार्थिक है। भाषिक प्रयोजनों की गतिशीलता के लिए सामाजिक गतिशीलता भी आवश्यक है।

भाषा, विचार और भाव की आधारभूत अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। इसमें असंख्य माध्यम एक साथ आकर मिलते हैं। अनेक, रंगों, परिवेशों, भावनाओं एवं व्यक्तियों में गतिशील होने के कारण भाषा का पूर्वरूप लगातार परिवर्तित होता रहता है। जिस प्रकार जीवन, गृह से भिज्जन नहीं होता इसी प्रकार बोलने-युक्त, बयता तथा भाषा-समाज की जगत और स्वर्ग में भी एकता होती है। भाषा को कुछ लोग ईश्वरीय देन मानते हैं। किन्तु यदि ईश्वर मानवीय भाषा का प्रयोग होता
होता तो यह भी ख्वीकार करना पड़ेगा कि उसकी भी अपनी कोई भाषा अवश्य रही होगी। भाषा व्यक्ति के सामाजिकरण का परिणाम है। प्रत्येक भाषा के मूल में धार्मिक अवधारणाएं भिन्न-भिन्न होती हैं। कुरानशरीफ को जोर-जोर से उच्चरण महत्वपूर्ण माना जाता है। प्राचीन यूरेपी-रोम-वासी जोर-जोर से प्रारंभ करने में विश्वास करते थे। वहाँ शान्त पूजा करने वालों को मिस्टरिक माना जाता था। तैयार ऊँचाई के उच्चरण में भी उदारत-अनुदापत तथा स्वरित पर विशेष बल दिया जाता रहा है। उच्चरण के इस महत्व को स्पष्ट करने के लिए तैयार की कथा कही जाती है। ‘जन्मशोकः विवर्णवः’ के गलत उच्चरण से त्वत्ता का अनिष्ट हुआ। श्रृः पर बलायत के स्थान पर इन्द्र पर वलायत से इन्द्र का बल बढ़ गया और तवस्ता मारा गया। इन्द्र तो स्पष्टः कहा जाता है कि भाषा में शुद्ध उच्चरण का विशेष महत्व है। भाषा प्रतिक्रियात्मक होती है। धर्म-दर्शन में प्रतीक का प्रयोग माध्यम के लिए किया जाता है। भाषा का प्रत्येक शब्द एक समय प्रतीक का स्थान लेता अवश्यक है किन्तु भाषा की गतिशीलता के साथ-साथ उसका सामाजिकरण हो जाता है और इस प्रवाह में उसका प्रतीक खो जाता है। भाषिक प्रतीकों का जीवन भी व्यक्तियों की भाषा गतिशीलता होता है जिस प्रकार जीवन का पात्र नाटक में अपनी भूमिका अदा करता है, वह मुख्रोटा ओढ़े होते हैं तथा उसका अपना अलग व्यक्तित्व भी होता है। उसी प्रकार प्रतीकों की निर्देशिकता को भी ख्वीकार जा सकता है। भाषा में जैसे ही देवता की स्थापना होती है वैसे ही यह अपने सतर्क से परे खिसकती जाती है। भाषा की यह अविश्वसनीयता जीवन के सभी क्षेत्रों से इसे अलग लेती है। इस अविश्वसनीयता के कारण धार्मिक भाषा तथा सामाजिक भाषा के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।
भाषण, श्रोण, अभिज्ञान, उदार-मनोवृत्ति प्रत्युत्तर परस्पर संबंध होते हैं।
इन चारों उपादानों का समुच्चय भाषा है। भाषा का प्रयोग अमूर्त और मूर्त दोनों रूपों में किया जा सकता है। व्यक्तिविश्लेषण होने पर मानवीय भाषा अमूर्त होती है और अपर व्यक्तिसापेक्ष होने पर वह मूर्त हो जाती है। एकात्म संबंधण करनेवाले व्यक्ति की भाषा अमूर्त होती है। जबकि पारस्परिक संबंधण में मूर्तता का समावेश हो जाता है। परस्पर सम्बन्धण से भाषा की सम्पूर्ण-प्रक्रिया गतिशील बनी रहती है। सम्पूर्णता की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यवहारिक भाषा का जन्म होता है। सम्पूर्णता भाषा आसानी से समझ में आजाती है। सम्पूर्णता के फलस्वरूप भाषा समाज-शिल्प हो जाती है।

मानव-आत्मा की अभिज्ञ भाषा के शब्दों में प्रविष्टित होती है। भाषा की निर्देशविद्या की अभिशोधक के प्रवास की यही विश्वासपाली प्रवृत्ति एक प्रकार से भाषा का धार्मिक पक्ष है। धार्मिक सत्य का ज्ञान ज्ञानविश्लेष है।

भाषा की विशिष्ट शब्दावली इस बात को प्रविष्टित करती है। भीड़ की अभिज्ञ के रूप में यह सांप्रदायिकता को जन्म देती है।

भाषा, परिवेशज्ञ प्रकृति पर पूर्णतः निभाते करती है। कभी-कभी तो ऐसा आभास होने लगता है कि प्रकृति ही लगातार नवीन रूप में भाषाओं में प्रकट होती है। ऐसिक्स की भाषा में बाप के जितने पर्याय मिलते हैं उन्नत अवज किसी भाषा में नहीं मिलते। प्रकृति के विशाल क्रोड में निवास करनेवाले वैदिककालीन भारतीय ऋषियों की भाषा में — इंद्र, अनिन, वरुण, भरत, वायु, इत्यादि, विष्णु, अधिन, द्युतिविश्व, विश्वेद, अस्म, हिरण्याक्ष, अदिति, वृहस्पति, तथा सरित का जो विशिष्ट स्वरूप मिलता है, वह अन्यत्र दुर्भाग्य है आज के साहित्य में ये केवल प्रकृति-शक्ति मात्र हैं, मानव जिज्ञासा दोहक-शोषक है।
भाषा का उद्देश्य मन के अंतर्गत तर्कहीन, अपरिपक्व तथा भावात्मक भाग से होता है। भाषा में सूक्ष्म दार्शनिक तर्क-भाव नहीं मिलता। इसमें आत्मा के भावात्मक, कलात्मक और रागात्मक अंशों का भी निर्देशन होता है। भाषा की व्याकरण तर्क-शास्त्र के आधार पर ही नहीं बल्कि मनोविज्ञान से भी की जा सकती है।

भाषा के आयतनिक स्वरूप को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है—अभिव्यक्ति-इबुकुक मन अपने मानसिक बिंदुओं को शब्द-रूप प्रदान करता है। वह अपने मानस-बिंदुओं के लिए रूपों का सर्जन करता है, अपनी सर्जनाओं का पुनःसर्जन करता है। इस पुनःसर्जन के फलस्वरूप भाषा समग्रतः न धार्मिक रहती है, न तत्त्विक, न प्रकृत, न ऐसिक। बल्कि केवल भाषा रह जाती है जिसके विशिष्ट भाषा वैज्ञानिक नियम होते हैं। सर्जनात्मक भाषा का विशिष्ट लक्षण है परिवेशीय मानसिकता को अपने में समाहित करके उसे अभिव्यक्ति प्रदान करना।

छायावादी काव्य में खैरी बोली हिंदी का प्रयोग किया गया है। इन कवियों ने संस्कृत की शब्दावली का प्रयोग बहुत अधिक किया है। वैसे इस प्रयोग से भाषा में एक नया प्राप्त आया जो पिछली भाषा के स्वरूप से कुछ भिन्न था। छायावादी कवियों ने लोकप्रसिद्ध शब्दावली का प्रयोग करने में भी कमी नहीं की।

निराला के कवित्ववादी साहित्य में इस प्रकार की भाषा का अनूठा सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। ‘कुकुरमुत्ता’ में जनसामाजिक की भाषा का प्रयोग सर्वच देखने को मिल जाता है। इसी प्रकार प्रसाद जी की आर्थिक कविताओं पर ब्रज भाषा का

1. प्रो। शाहिदल्लु, सर्जनात्मक गद्दी-भाषा और काव्य-भाषा पू० १९ छोटू
सीधा प्रभाव दिखाई पड़ता है महादेवी और रामकुमार वर्मा भी संस्कृतनिच्छु शब्दावली सब जगह देखने को मिल जाती है।

इनके कुछ निजन उदाहरण इस प्रकार हैं।

जारी! तुम केवल श्रद्धा हो दिशवास-रजत-नग पणतलमें,
पीयूष-शोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।

दैन्य जिह्दा अपलक नत विवाह,
अधरों में घर नीव रोदन,
युग के तम से, विष्णु मन
वह अपने घर में
प्रवासिनी।

वे जो यमुना के से काँकर
पद फटे विवाह के उधार
चमरौंधे जूते से सकेता
निकलें जी लेते, घेर गाथ,
उन चरणों को हैं यथा अवभ,
कल प्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पत्तु ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से मिरिणा-विवाह
करने की अलस्को नहीं चाह।

1. प्रसाद, कामायनी, श्रद्धा सर्ग
2. पत्ता, पत्ता की विशेष रचनाएं ‘भारत माता’ से पृ 10
3. निराला, अनामिका, पृ 130
1.5.2 विचार-चेतना

‘भाषा और विचार में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। भाषा में विचार समाहित होते हैं। मनुष्य विचारकान्ति प्राप्ति है। मनुष्य तथा ब्रह्माण्ड में अन्तर यह है कि मनुष्य पुष्कर के पड़कर कार चलाना सीख जाता है जबकि ब्रह्माण्ड नकल करके सीखता है। मनुष्य अपने तर्क के अनुसार चुट-चुट परिवर्तन स्वयं कर लेता है जबकि ब्रह्माण्ड ऐसा नहीं कर पाता। भाषा की रचना और मानव विज्ञ-प्रकृति में गहन साम्य है।

भाषा-भाव एवं विचार के माध्यम से अर्थ-संवहन का साधन है विचार अर्थ को आधार अवश्य प्रदान करते हैं किन्तु अर्थ-समझिति सामूहिक चेतना की मनोविज्ञानिक स्वीकृति में है। शब्द-अर्थ को उजागर करने का साधन है-वाक्य-प्रतीक। प्रतीक ‘अर्जित’ संज्ञक होने के कारण परिवेश का स्पष्ट ध्यातन करने में असमर्थ रहता है। शब्द, मात्रा ध्वनि-संयोजक न होकर वस्तु, स्थल तथा क्रिया आदि के लिए स्वीकृत वाक्य-प्रतीक है। भाषा, सत्य की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की प्रकृति कहीं जा सकती है।

जिस भाषा के अर्थ, विचार-व्याख्या नहीं होते उस भाषा को अर्थपूर्ण भाषा की संज्ञा दी जाती है। भाषा में विचार समाहित होते हैं। भाषा को अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन नहीं कहा जाता।

विचार को स्पष्ट ध्यातन न कर पाने के कारण भाषागत तथ्य में कुछ न कुछ अस्पष्टता तथा भिन्नता अवश्य रहती है। इसी कारण सर्जनात्मक साहित्य की भाषा के बाह्य स्वरूप के माध्यम से इसके आत्मिक स्वरूप तक पहुँचने का प्रयास बराबर चलता रहता है।
भाषा में अर्थ-ग्रहण के लिए अमूर्तित विचार का सम्पूर्ण आवश्यक है। यदि वक्ता अथवा श्रोता इस प्रक्रिया में असफल होते हैं तो भाषा में अर्थ-ग्रहण की समस्या जटिल हो जाती है।

विचार, निर्णय तक पहुँचने के तात्विक साधन हैं। इस्तेमाल अथवा पदार्थों की व्याख्या के साधन भी मान सकते हैं। विचार, निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए परस्मार्थक है। ये अन्वेषणों को दिशा भी प्रदान करते हैं। ये तथ्यों के संग्रह तथा निरीक्षण को भी नियंत्रित करते हैं।

विचार, समस्या के समाधान के लिए साधन खोज निकलने के उपकरण होते हैं। यदि इस बात पर विचार किया जाए कि मंजूल आनंद-दायी होती है या नहीं तो इसके समाधान के लिए पहले मंजूल पदार्थ का अविष्कार आवश्यक हो जाएगा।

विचार का अंत, जानकारी देकर होता है। विचार के फलस्वरूप घटना या पदार्थ, अर्थ-ग्रहण करता है। अभिज्ञात पदार्थ अथवा अर्थपूर्ण पदार्थ ऐसे विचारों से तत्वतः भिन्न होता है जिसमें संदेह की गुंजाईश रह जाती है। जिस विचार में अर्थ की समझना नहीं होती वह भाषा में किसी महत्त्व का नहीं होता। पाण्डुर्गल व्यक्ति के विश्वासित विचार किसी निश्चित अर्थ को देने में सहायक नहीं होते। इसी कारण इनका साहित्य में कोई स्थान नहीं है।

काव्य भाषा में भाव और विचार का विशेष महत्व रहता है। भाव कविता को रसात्मक बनाता है जबकि विचार उसे गति प्रदान करता है।

छायावादी कवियों में भाव की प्रधानता तो है ही साथ-साथ ही ये कवि वैचारिकता से भी अलग नहीं हुए हैं। प्रसाद जी की काव्यप्रती और निराला की

1. प्रो शिवकुमार शाहिद्दिया, सर्जनात्मक गद्य-भाषा और काव्य-भाषा पृ० 21-24
साध्वकाली की रचनाओं में दार्शनिक विचार बराबर देखने को मिल जाते हैं। 
निराला की लगभग सभी कविताएं वैधानिकता से अपूर्वी नहीं हैं । इसके अतिरिक्त 
रामचुमार वर्मा, पंत और महादेवी वर्मा के भी विचार-पक्ष कम नहीं हैं । 
हो मलते कलेजा पढ़े, धरा-जीर्णा, 
निर्गिमेश नयनों 
रह जोहते हो तुम मृतु की 
अपनी सदनाओं से बूंद भर पानी को गरासते हुए'!
हमें गुंजत करती है पहिले काम-चेतना 
युग-युग की क्रूर जटिल प्रभुवियों से जो पीड़ित, 
रागद्वेष, कुलसा कलंक की कुपण दृष्टि से 
उसे बचाना है, गत जैतिक कोण बुद्धिकर्म ।

1.5.3 कला-चेतना 

वस्तु के दर्शन अथवा प्रत्यक्षकरण के फलस्वरुप हृदय का भाव उदयुक्त 
होकर जब रसालक रूप ग्रहण करता है तब दृष्ट के मन में वस्तु के प्रति 
स्वभावतः आकर्षक उत्पन्न होता है। दृष्ट का वस्तु के प्रति यह आकर्षण अथवा 
हृदय की रसालक स्थिति को कला से अभिहित किया जाता है । आकर्षण में 
मान्याभेद होना आवश्यक है। मान्य-भेद के फलस्वरुप व्यक्तिविश्व कला की सीमाएँ 
निर्धारित हो जाती है। व्यक्तिविश्व का कला-बोध जितना गहर रस-सिक्त होगा 
अभिव्यक्ति भी उसी हद तक आनन्ददायिनी होगी।

1. निराला, अनंतिका पृ 29
2. पंत, पंतप्राण्यावली खण्ड 3 पृ 91
कलाबुध्वति, व्यक्तिगत रूप से आधारित होती है। इसी कारण इस अनुभूति
का कोई सामान्य मापदंड निर्धारित करना कठिन होता है। रूढि का कलाबुध्वति
से अभिन्न सम्बन्ध है। रूढि-भेद के कारण कलाबुध्वति भी भिन्न हो जाती है।
रूढि संस्कृति से प्राप्त होती है। इसी कारण संस्कृतियों में कला-भावना
वैभव्य स्पष्ट देखा जा सकता है। नीचे जाति के लोग जीते होंठ, विशाल ललाट,
स्वाभ काले रंग को आकर्षण का विषय मानते हैं जबकि गोरी जाति के लोग पतले
होंठ, मध्यम मस्तक एवं गोरे रंग पर आकर्षित होते हैं। संस्कृति कला, के संस्कार
(रूढि) प्रदान करती है।

कला सौंदर्य की अधिकारी है। इस कला के माध्यम से साहित्य की सभी
विधाओं में सौंदर्य का प्रसार होता है। साहित्यिक कलालयकला के अन्तर्गत भाव,
विचार, कल्पना, छंद, अलंकार, रस, अभिव्यक्ति, विभाग, मिथक आदि का समावेश
हो जाता है। क्षाव्यादी कवियों ने परम्परा से हटकर काव्य-रचना की किंतु उनके
काव्य में कभी पक्षों का सौंदर्य सर्वथा दिखाई पडता है। इन कवियों की कविता
में नया भावोध, नये छंद, नये प्रतीक, नये विभेद, नये मिथक, नये अलंकार आदि
सभी मिल जाते हैं। जिसके कुछ उदाहरण ये हैं:

पिरे रहे थे पुंपराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास,
बील घन शावक से सुकुमार, सुदा-मरने को विषु के पास²
पद चले, जीवन चला ललके चली, स्पदन सही थल
किंतु चलता रहा भेजा किंतु भी दूर धूमिल।³

इस अक्षु की घाटी यह हंस मुख पूरलों की

1. प्रो. शिवसुभास शाहड्य, सर्जनालनक गद्य-भाषा ओपर काव्य-भाषा, पप० 7-25
2. विशारद, कामायनी, श्रवण सर्ज पप० 24
3. भागदेवी वर्मा, श्रेष्ठ उपकार भेजा सजल गद्य देख लेते
साहित्य

साहित्य समाज का दर्पण होता है जिस साहित्य में समाज के प्रति जितनी गहरी संवेदना होती है और वे साहित्य उतना ही स्थायी होता है । छायावादी काव्य में समाज के सभी वर्गों की कठिनाईयाँ और विसंगतियों के प्रति वेदना है। ऐसी वेदना के कुछ उदाहरण इसी अध्याय में सामाजिक कुप्पनियों एवं अंडे विश्वासों का विरोध शीर्षक में दिये गए हैं । ‘कामयानी’ के कुछ उदाहरण यह हैं,

‘कर्म-यज्ञ से जीवन के स्वर्गों का स्वर्ग मिलेगा,
सी विपिन में मानस की आशा का कुघूम खिलेगा।’
प्रकर विनाशील जन्तन में विपुल विश्व की माया,
क्षण-क्षण होती प्रकट नवीना बनकर उसकी काया।

‘यह उजड़ सूना नगर-प्रांत
जिसमें दुःख दुःख की परिभाषा विकस्त शिल्प सी हो नितांत
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भावना बनी आशात
कितनी सुखावस ग्रूटियाँ, अपूर्ण रूढ़ि बन कर मैंसाराती विकीर्ण
इन देरों में दुःखभरी कुप्पनिय दब रही अभी बन पात्र जीवन
आती दुलार की हिचकी-सी चूज खोलों में कसम भरी
इस सूखे तरु पर मनोवृत्ति आकाश-बेलि सी रही हरी
जीवन-समाधि के खङ्खर पर जो जल उठते दीपक आशात
फिर बुझ जाते वे स्वयं शांत।’

1. प्रसाद, कामायनी, कर्म सर्ग पृ 0 49
2. प्रसाद, कामायनी, कर्म सर्ग पृ 0 53
3. प्रसाद, कामायनी, इंड्रा सर्ग पृ 0 66
‘तरल अभिन की दीढ़ लगी है सब के भीतर,
गल कर बहते हिम-जग सरिता-लीला रच कर।
यह सफलिग का जूत्य एक पल आया बीता।
ठिकने को कब मिला किसी को यहाँ सुभीता ।
यह नर्तन उन्मुक्त विश्व का स्वंदन दूततर,
गतिमय होता चला जा रहा अपने लय पर ।
कभी-कभी हम वही देखते पुनरावर्तन,
उसे मानते नियम चल रहा जिससे जीवन’।।
“भीषण जन-संहार आप ही तो होता है,
ओ पागल प्राणी तू क्यों जीवन खोता है।
क्यों इतना आतंक छहर जाओ गर्विले,
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले”।।

छ्यावादी काव्य रीतिकाल की चलती आयी परम्परा के विरोध में रचा गया
काव्य कहा जा सकता है । इस काव्य में परस्परागत काव्य सिद्धांतों, रस, छन्द
अलंकार, बक्रोक्कल, और प्रतीकों की नई सिरे से सृष्टि की है यह काव्य नहीं शैली
और कथन प्रणाली को लेकर उपस्थित हुआ । ‘जिराला की ज्याही की कली’ से
छन्दों के बव्य भी दूर गए हैं। इन कवियों ने कई जये मात्रिक छन्दों की रचना
की और इस प्रकार यह काव्य परम्परा से काफी दूर हट गया। यह काव्य तक नई
जीवन दृष्टि, नया सौदर्यबोध, नई भंगिमा तथा संवेदनशील अभिव्यंजना लेकर
काव्य जगत में उपस्थित हुआ। इस काव्य में सक्रिय तथा प्रत्यक्ष मूलक जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी।

छायावाद में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना के नये आयाम दिखाई पड़ते हैं। इस काल में समाज के पीड़ित और दलित वर्ग की संबंधनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी। यह काव्य नारी के प्रगतिशील और कर्मठ स्वरूप का अंकन अत्यन्त मार्गितता से कर सका। प्रसाद जी तो नारी को श्रद्धा रूप मानते हैं और उसे दृष्टि की सामान्यता आवृति को परिचायक भी मानते हैं।

यह कहना सर्वथा उचित होगा कि छायावाद में भारतीय काव्य परम्परा में नये आयाम जोड़ दिए और इसके बाद एक के बाद परम्परा विरोधी रचनाओं का सूजनपत्र हुआ।